श्रीमद्भागवत रसिक कुटुंब

UG-11.27- षष्ठः सोपान(अर्थ)

उद्धव उवाच

क्रियायोगं(म्) समाचक्ष्व, भवदाराधनं(म) प्रभो ।

यस्मात्त्वां(यँ) ये यथार्चन्ति, सात्वताः(स्) सात्वतर्षभ ॥ 1॥

उद्धव जी ने पूछा- 'भक्तवत्सल श्रीकृष्ण! जिस क्रियायोग का आश्रय लेकर जो भक्तजन जिस प्रकार से जिस उद्देश्य से आपकी अर्चा-पूजा करते हैं, आप अपने उस आराधनारूप क्रियायोग का वर्णन कीजिये।

एतद् वदन्ति मुनयो, मुहुर्निः(श्) श्रेयसं(न्) नृणाम् ।

नारदो भगवान् व्यास, आचार्योऽङ्गिरसः(स्) सुतः ॥ 2॥

देवर्षि नारद, भगवान व्यासदेव और आचार्य बृहस्पति आदि बड़े-बड़े ऋषि-मुनि यह बात बार-बार कहते हैं कि क्रियायोग के द्वारा आपकी आराधना ही मनुष्यों के परम कल्याण की साधना है।

निः(स्)सृतं(न्) ते मुखाम्भोजाद्, यदाह भगवानजः ।

पुत्रेभ्यो भृगुमुख्येभ्यो, देव्यै च भगवान् भवः ॥ 3॥

यह क्रियायोग पहले-पहल आपके मुखारविन्द से ही निकला था। आपसे ही ग्रहण करके इसे ब्रह्मा जी ने अपने पुत्र भृगु आदि महर्षियों को और भगवान शंकर ने अपनी अर्द्धांगिनी भगवती पार्वती जी को उपदेश किया था।

एतद् वै सर्ववर्णाना- माश्रमाणां(ञ्) च सम्मतम् ।

श्रेयसामुत्तमं(म्) मन्ये, स्त्रीशूद्राणां(ञ्) च मानद ॥ 4॥

मर्यादारक्षक प्रभो! यह क्रियायोग ब्राह्मण-क्षत्रिय आदि वर्णों और ब्रह्मचारी-गृहस्थ आदि आश्रमों के लिये भी परम कल्याणकारी है। मैं तो ऐसा समझता हूँ कि स्त्री-शूद्रादि के लिये भी यही सबसे श्रेष्ठ साधना-पद्धति है।

एतत् कमलपत्राक्ष- कर्मबन्धविमोचनम् ।

भक्ताय चानुरक्ताय, ब्रूहि विश्वेश्वरेश्वर ॥ 5॥

कमलनयन श्यामसुन्दर! आप शंकर आदि जगदीश्वरों के भी ईश्वर हैं और मैं आपके चरणों का प्रेमी भक्त हूँ। आप कृपा करके मुझे यह कर्मबन्धन से मुक्त करने वाली विधि बतलाइये।

श्रीभगवानुवाच

न ह्यन्तोऽनन्तपारस्य, कर्मकाण्डस्य चोद्धव ।

सं(ञ्)क्षिप्तं(वँ) वर्णयिष्यामि, यथावदनुपूर्वशः ॥ 6॥

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा- उद्धव जी! कर्मकाण्ड का इतना विस्तार है कि उसकी कोई सीमा नहीं है; इसलिये मैं उसे थोड़े में ही पूर्वा पर क्रम से विधिपूर्वक वर्णन करता हूँ।

वैदिकस्तान्त्रिको मिश्र, इति मे त्रिविधो मखः ।

त्रयाणामीप्सितेनैव, विधिना मां(म्) समर्चयेत् ॥ 7॥

मेरी पूजा की तीन विधियाँ हैं- वैदिक, तान्त्रिक और मिश्रित। इन तीनों में से मेरे भक्त को जो भी अपने अनुकूल जान पड़े, उसी विधि से मेरी आराधना करनी चाहिये।

यदा स्वनिगमेनोक्तं(न्), द्विजत्वं(म्) प्राप्य पूरुषः ।

यथा यजेत मां(म्) भक्त्या, श्रद्धया तन्निबोध मे ॥ 8॥

पहले अपने अधिकारानुसार शास्त्रोक्त विधि से समय पर यज्ञोपवीत-संस्कार के द्वारा संस्कृत होकर द्विजत्व प्राप्त करे, फिर श्रद्धा और भक्ति के साथ वह किस प्रकार मेरी पूजा करे, इसकी विधि तुम मुझसे सुनो।

अर्चायां(म्) स्थण्डिलेऽग्नौ वा, सूर्ये वाप्सु हृदि द्विजे ।

द्रव्येण भक्तियुक्तोऽर्चेत् - स्वगुरुं(म्) माममायया ॥ 9॥

भक्तिपूर्वक निष्कपट भाव से अपने पिता एवं गुरुरूप मुझ परमात्मा का पूजा की सामग्रियों के द्वारा मूर्ति में, वेदी में, अग्नि में, सूर्य में, जल में, हृदय में अथवा ब्राह्मण में-चाहे किसी में भी आराधना करे।

पूर्वं(म्) स्नानं (म्) प्रकुर्वीत, धौतदन्तोऽङ्गशुद्धये ।

उभयैरपि च स्नानं(म्), मन्त्रैर्मृद्ग्रहणादिना ॥ 10॥

उपासक को चाहिये कि प्रातःकाल दातुन करके पहले शरीर शुद्धि के लिये स्नान करे और फिर वैदिक और तान्त्रिक दोनों प्रकार के मन्त्रों से मिट्टी और भस्म आदि का लेप करके पुनः स्नान करे।

सन्ध्योपास्त्यादिकर्माणि, वेदेनाचोदितानि मे ।

पूजां(न्) तैः(ख्) कल्पयेत् सम्यक्, सं(ङ्)कल्पः(ख्) कर्मपावनीम् ॥ 11॥

इसके पश्चात् देवोक्त सन्ध्या-वन्दनादि नित्यकर्म करने चाहिये। उसके बाद मेरी आराधना का ही सुदृश संकल्प करके वैदिक और तान्त्रिक विधि से कर्मबन्धनों से छुड़ाने वाली मेरी पूजा करे।

शैली दारुमयी लौही, लेप्या लेख्या च सैकती ।

मनोमयी मणिमयी, प्रतिमाष्टविधा स्मृता ॥ 12॥

मेरी मूर्ति आठ प्रकार की होती है- पत्थर की, लकड़ी की, धातु की, मिट्टी और चन्दन आदि की, चित्रमयी, बालुकामयी, मनोमयी और मणिमयी।

चलाचलेति द्विविधा, प्रतिष्ठा जीवमन्दिरम् ।

उद्वासावाहने न स्तः(स्), स्थिरायामुद्धवार्चने ॥ 13॥

चल और अचल भेद से दो प्रकार की प्रतिमा ही मुझ भगवान का मन्दिर है। उद्धव जी! अचल प्रतिमा के पूजन में प्रतिदिन आवाहन और विसर्जन नहीं करना चाहिये।

अस्थिरायां(वँ) विकल्पः(स्) स्यात्, स्थण्डिले तु भवेद् द्वयम् ।

स्नपनं(न्) त्वविलेप्याया- मन्यत्र परिमार्जनम् ॥ 14॥

चल प्रतिमा के सम्बन्ध में विकल्प है। चाहे करे और चाहे न करे। परन्तु बालुकामयी प्रतिमा में तो आवाहन और विसर्जन प्रतिदिन करना ही चाहिये। मिट्टी और चन्दन की तथा चित्रमयी प्रतिमाओं को स्नान न करावे, केवल मार्जन कर दे; परन्तु और सबको स्नान कराना चाहिये।

द्रव्यैः(फ्) प्रसिद्धैर्मद्यागः(फ्), प्रतिमादिष्वमायिनः ।

भक्तस्य च यथालब्धैर्- हृदि भावेन चैव हि ॥ 15॥

प्रसिद्ध-प्रसिद्ध पदार्थों से प्रतिमा आदि में मेरी पूजा की जाती है, परन्तु जो निष्काम भक्त हैं, वह अनायास प्राप्त पदार्थों से और भावना मात्र से ही हृदय में मेरी पूजा कर ले।

स्नानालं(ङ्)करणं(म्) प्रेष्ठ- मर्चायामेव तूद्धव ।

स्थण्डिले तत्त्वविन्यासो, वह्नावाज्यप्लुतं(म्) हविः ॥ 16॥

उद्धव जी! स्नान, वस्त्र, आभूषण आदि तो पाषाण अथवा धातु की प्रतिमा के पूजन में ही उपयोगी हैं। बालुकामयी मूर्ति अथवा मिट्टी की वेदी में पूजा करनी हो तो उसमें मन्त्रों के द्वारा अंग और उसके प्रधान देवताओं की यथास्थान पूजा करनी चाहिये तथा अग्नि में पूजा करनी हो तो घृतमिश्रित हवन-सामग्रियों से आहुति देनी चाहिये।

सूर्ये चाभ्यर्हणं(म्) प्रेष्ठं(म्),सलिले सलिलादिभिः ।

श्रद्धयोपाहृतं(म्) प्रेष्ठं (म्), भक्तेन मम वार्यपि ॥ 17॥

सूर्य को प्रतीक मानकर की जाने वाली उपासना में मुख्यतः अर्घ्यदान एवं उपस्थान ही प्रिय है और जल में तर्पण आदि से मेरी उपासना करनी चाहिये। जब मुझे कोई भक्त हार्दिक श्रद्धा से जल भी चढ़ाता है, तब मैं उसे बड़े प्रेम से स्वीकार करता हूँ।

भूर्यप्यभक्तोपाहृतं(न्), न मे तोषाय कल्पते ।

गन्धो धूपः(स्) सुमनसो, दीपोऽन्नाद्यं(ञ्) च किं(म्) पुनः ॥ 18॥

यदि कोई अभक्त मुझे बहुत-सी सामग्री निवेदन करे तो भी मैं उससे सन्तुष्ट नहीं होता। जब मैं भक्ति-श्रद्धापूर्वक समर्पित जल से ही प्रसन्न हो जाता हूँ, तब गन्ध, पुष्प धूप, दीप और वैनेद्य आदि वस्तुओं के समर्पण से तो कहना ही क्या है।

शुचिः(स्) सम्भृतसम्भारः(फ्),प्राग्दर्भैः(ख्) कल्पितासनः ।

आसीनः(फ्) प्रागुदग् वार्चे- दर्चायामथ सम्मुखः ॥ 19॥

उपासक पहले पूजा की सामग्री इकट्ठी कर ले। फिर इस प्रकार कुश बिछाये कि उनके अगले भाग पूर्व की ओर रहें। तदनन्तर पूर्व या उत्तर की ओर मुँह करके पवित्रता से उन कुशों के आसन पर बैठ जाये। यदि प्रतिमा अचल हो तो उसके सामने ही बैठना चाहिये। इसके बाद पूजा कार्य प्रारम्भ करे।

कृतन्यासः(ख्) कृतन्यासां(म्),मदर्चां(म्) पाणिना मृजेत् ।

कलशं(म्) प्रोक्षणीयं(ञ्) च, यथावदुपसाधयेत् ॥ 20॥

पहले विधिपूर्वक अंगन्यास और करन्यास कर ले। इसके बाद मूर्ति में मन्त्रन्यास करे और हाथ से प्रतिमा पर से पूर्वसमर्पित सामग्री हटाकर उसे पोंछ दे। इसके बाद जल से भरे हुए कलश और प्रोक्षण पात्र आदि की पूजा गन्ध-पुष्प आदि से करे।

तदद्भिर्देवयजनं(न्), द्रव्याण्यात्मानमेव च ।

प्रोक्ष्य पात्राणि त्रीण्यद्भिस्- तैस्तैर्द्रव्यैश्च साधयेत् ॥ 21॥

पाद्यार्घ्याचमनीयार्थं(न्), त्रीणि पात्राणि दैशिकः ।

हृदा शीर्ष्णाथ शिखया, गायत्र्या चाभिमन्त्रयेत् ॥ 22॥

प्रोक्षणपात्र के जल से पूजा सामग्री और अपने शरीर का प्रोक्षण कर ले। तदनन्तर पाद्य, अर्घ्य और आचमन के लिये तीन पात्रों में कलश में से जल भरकर रख ले और उसमें पूजा-पद्धति के अनुसार

सामग्री डाले। इसके बाद पूजा करने वाले को चाहिये कि तीनों पात्रों को क्रमशः हृदयमन्त्र, शिरोमन्त्र और शिखामन्त्र से अभिमन्त्रित करके अन्त में गायत्री मन्त्र से तीनों को अभिमन्त्रित करे।

पिण्डे वाय्वग्निसं(म्)शुद्धे, हृत्पद्मस्थां(म्) परां(म्) मम ।

अण्वीं(ञ्) जीवकलां(न्) ध्यायेन्- नादान्ते सिद्धभाविताम् ॥ 23॥

इसके बाद प्राणायाम के द्वारा प्राण-वायु और भावनाओं द्वारा शरीरस्थ अग्नि के शुद्ध हो जाने पर हृदयकमल में परम सूक्ष्म और श्रेष्ठ दीपशिखा के समान मेरी जीव कला का ध्यान करे। बड़े-बड़े सिद्ध ऋषि-मुनि ॐकार के अकार, उकार, मकार, बिन्दु और नाद-इन पाँच कलाओं के अन्त में उसी जीवकला का ध्यान करते हैं।

तयाऽऽत्मभूतया पिण्डे, व्याप्ते सम्पूज्य तन्मयः ।

आवाह्यार्चादिषु स्थाप्य, न्यस्तां(ङ्)गं(म्) मां(म्) प्रपूजयेत् ॥ 24॥

वह जीवकला आत्मस्वरूपिणी है। जब उसके तेज से सारा अन्तःकरण और शरीर भर जाये तब मानसिक उपचारों से मन-ही-मन उसकी पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर तन्मय होकर मेरा आवाहन करे और प्रतिमा आदि में स्थापना करे। फिर मन्त्रों के द्वारा अंगन्यास करके उसमें मेरी पूजा करे।

पाद्योपस्पर्शार्हणादी- नुपचारान् प्रकल्पयेत् ।

धर्मादिभिश्च नवभिः(ख्), कल्पयित्वाऽऽसनं(म्) मम ॥ 25॥

पद्ममष्टदलं(न्) तत्र, कर्णिकाकेसरोज्ज्वलम् ।

उभाभ्यां(वँ) वेदतन्त्राभ्यां(म्), मह्यं(न्) तूभयसिद्धये ॥ 26॥

उद्धव जी! मेरे आसन में धर्म आदि गुणों और विमला आदि शक्तियों की भावना करे। अर्थात् आसन के चारों कोनों में धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्यरूप चार पाये हैं; अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य और अनैश्वर्य-ये चार चारों दिशाओं में डंडे हैं; सत्त्व-रज-तम-रूप तीन पटरानियों की बनी हुई पीठ है; उस पर विमला, उत्कर्षिणी, ज्ञाना, क्रिया, योग, प्रह्वी, सत्या, ईशाना और अनुग्रहा-ये नौ शक्तियाँ विराजमान हैं। उस आसन पर एक अष्टदल कमल है, उसकी कर्णिका अत्यन्त प्रकाशमान है और पीली-पीली केसरों की छटा निराली ही है। आसन के सम्बन्ध में ऐसी भावना करके पाद्य, आचमनीय और अर्घ्य आदि उपचार प्रस्तुत करे। तदनन्तर भोग और मोक्ष की सिद्धि के लिये वैदिक और तान्त्रिक विधि से मेरी पूजा करे।

सुदर्शनं(म्) पाञ्चजन्यं(ङ्), गदासीषुधनुर्हलान् ।

मुसलं(ङ्) कौस्तुभं(म्) मालां(म्), श्रीवत्सं(ञ्) चानुपूजयेत् ॥ 27॥

सुदर्शन चक्र, पाञ्चजन्य शंख, कौमोदकी गदा, खड्ग, बाण, धनुष, हल, मूसल-इन आठ आयुधों की पुजा आठ दिशाओं में करे और कौस्तुभ मणि, वैजयन्ती माला तथा श्रीवत्स चिह्न की वक्षःस्थल पर यथास्थान पूजा करे।

नन्दं(म्) सुनन्दं(ङ्) गरुडं(म्), प्रचण्डं(ञ्) चण्डमेव च ।
महाबलं(म्) बलं(ञ्) चैव, कुमुदं(ङ्) कमुदेक्षणम् ॥ 28॥

दुर्गां(वँ) विनायकं(वँ) व्यासं(वँ), विष्वक्सेनं(ङ्) गुरून् सुरान् ।
स्वे स्वे स्थाने त्वभिमुखान्, पूजयेत् प्रोक्षणादिभिः॥ 29॥

नन्द, सुनन्द, प्रचण्ड, चण्ड, महाबल, बल, कुमुद और कुमुदेक्षण-इन आठ पार्षदों की आठ दिशाओं में; गरुड़ की सामने; दुर्गा, विनायक, व्यास और विश्वक्सेन की चारों कोनों में स्थापना करके पूजन करे। बायीं ओर गुरु की और यथाक्रम पुर्वादि दिशाओं में इन्द्रादि आठ लोकपालों की स्थापना करके प्रोक्षण, अर्घ्यदान आदि क्रम से उनकी पूजा करनी चाहिये।

चन्दनोशीरकर्पूर- कुं(ङ्)कुमागुरुवासितैः ।
सलिलैः(स्) स्नापयेन्मन्त्रैर्- नित्यता विभवे सति ॥ 30॥

स्वर्णघर्मानुवाकेन, महापुरुषविद्यया ।
पौरुषेणापि सूक्तेन, सामभी राजनादिभिः ॥ 31॥

प्रिय उद्धव! यदि सामर्थ्य हो तो प्रतिदिन चन्दन, खस, कपूर, केसर और अरगजा आदि सुगन्धित वस्तुओं द्वारा सुवासित जल से मुझे स्नान कराये और उस समय 'सुवर्ण घर्म' इत्यादि स्वर्णघर्मानुवाक, 'जितं ते पुण्डरीकाक्ष' इत्यादि महापुरुषविद्या, 'सहस्रशीर्षा पुरुषः' इत्यादि पुरुष सूक्त और 'इन्द्रं नरो नेमधिता हवन्त' इत्यादि मन्त्रोक्त राजनादि साम-गायन का पाठ भी करता रहे।

वस्त्रोपवीताभरण- पत्रस्रग्गन्धलेपनैः ।
अलं(ङ्)कुर्वीत सप्रेम, मद्भक्तो मां(यँ) यथोचितम् ॥ 32॥

मेरा भक्त वस्त्र, यज्ञोपवीत, आभूषण, पत्र, माला, गन्ध और चन्दनादि से प्रेमपूर्वक यथावात् मेरा श्रृंगार करे।

पाद्यमाचमनीयं(ञ्) च, गन्धं(म्) सुमनसोऽक्षतान् ।

धूपदीपोपहार्याणि, दद्यान्मे श्रद्धयार्चकः ॥ 33॥

उपासक श्रद्धा के साथ मुझे पाद्य, आचमन, चन्दन, पुष्प, अक्षत, धूप, दीप आदि सामग्रियाँ समर्पित करे।

गुडपायससर्पीं(म्)षि, शष्कुल्यापूपमोदकान् ।

सं(यँ)यावदधिसूपां(श्)श्च, नैवेद्यं(म्) सति कल्पयेत् ॥ 34॥

यदि हो सके तो गुड़, खीर, घृत, पुड़ी, हुए, लड्डू, हलुआ, दही और डाल आदि विविध व्यंजनों का नैवेद्य लगावे।

अभ्यं(ङ्)गोन्मर्दनादर्श- दन्तधावाभिषेचनम्।

अन्नाद्यगीतनृत्यादि, पर्वणि स्युरुतान्वहम् ॥ 35॥

भगवान के विग्रह को दतुअन कराये, उबटन लगाये, पंचामृत आदि से स्नान कराये, सुगन्धित पदार्थों का लेप करे, दर्पण दिखाये, भोग लगाये और शक्ति हो तो प्रतिदिन अथवा पर्वों के अवसर पर नाचने-गाने आदि का भी प्रबन्ध करे।

विधिना विहिते कुण्डे, मेखलागर्तवेदिभिः ।

अग्निमाधाय परितः(स्), समूहेत् पाणिनोदितम्॥ 36॥

उद्धव जी! तदनन्तर पूजा के बाद शास्त्रोक्त विधि से बने हुए कुण्ड में अग्नि की स्थापना करे। वह कुण्ड मेखला, गर्त और वेदी से शोभायमान हो। उसमें हाथ की हवा से अग्नि प्रज्वलित करके उसका परिसमूहन करे, अर्थात् उसे एकत्र कर दे।

परिस्तीर्याथ पर्युक्षे- दन्वाधाय यथाविधि ।

प्रोक्षण्याऽऽसाद्य द्रव्याणि, प्रोक्ष्याग्नौ भावयेत माम् ॥ 37॥

वेदी के चारों ओर कुशकण्डिका करके अर्थात् चारों ओर बीस-बीस कुश बिछाकर मन्त्र पढ़ता हुआ उन पर जल छिड़के। इसके बाद विधिपूर्वक समिधाओं का आधानरूप अन्वाधान कर्म करके अग्नि के उत्तर भाग में होमोपयोगी सामग्री रखे और प्रोक्षणी पात्र के जल से प्रोक्षण करे।

तप्तजाम्बूनदप्रख्यं(म्), शं(ङ्)खचक्रगदाम्बुजैः।

लसच्चतुर्भुजं(म्) शान्तं(म्), पद्मकिं(ञ्)जल्कवाससम् ॥ 38॥

तदनन्तर अग्नि में मेरा इस प्रकार ध्यान करे। 'मेरी मूर्ति तपाये हुए सोने के समान दम-दम दमक रही है। रोम-रोम से शान्ति की वर्षा हो रही है। लंबी और विशाल चार भुजाएँ शोभायमान हैं। उनमें शंख, चक्र, गदा, पद्म विराजमान हैं। कमल की केसर के समान पीला-पीला वस्त्र फहरा रहा है।

स्फुरत्किरीटकटक- कटिसूत्रवरां(ङ्)गदम् ।

श्रीवत्सवक्षसं(म्) भ्राजत्- कौस्तुभं(वँ) वनमालिनम् ॥ 39॥

सिर पर मुकुट, कलाइयों में कंगन, कमर में करधनी और बाँहों में बाजूबंद झिलमिला रहे हैं। वक्षःस्थल पर श्रीवत्स का चिह्न है। गले में कौस्तुभ मणि जगमगा रही है। घुटनों तक वनमाला लटक रही है।

ध्यायन्नभ्यर्च्य दारूणि, हविषाभिघृतानि च ।

प्रास्याज्यभागावाघारौ, दत्त्वा चाज्यप्लुतं(म्) हविः ॥ 40॥

अग्नि में मेरी इस मूर्ति का ध्यान करके पूजा करनी चाहिये। इसके बाद सूखी समिधाओं को घृत में डुबोकर आहुति दे और आज्यभाग और आघार नामक दो-दो आहुतियों से और भी हवन करे। तदनन्तर घी से भिगोकर अन्य हवन-सामग्रियों से आहुति दे।

जुहुयान्मूलमन्त्रेण, षोडशर्चावदानतः ।

धर्मादिभ्यो यथान्यायं(म्),मन्त्रैः(स्) स्विष्टिकृतं(म्) बुधः ॥ 41॥

इसके बाद अपने इष्टमन्त्र से अथवा 'ॐ नमो नारायणाय' इस अष्टाक्षर मन्त्र से तथा पुरुष सूक्त के सोलह मन्त्रों से हवन करे। बुद्धिमान पुरुष को चाहिये कि धर्मादि देवताओं के लिये भी विधिपूर्वक मन्त्रों से हवन करे और स्विष्टकृत् आहुति भी दे।

अभ्यर्च्याथ नमस्कृत्य, पार्षदेभ्यो बलिं(म्) हरेत् ।

मूलमन्त्रं(ञ्) जपेद् ब्रह्म, स्मरन्नारायणात्मकम् ॥ 42॥

इस प्रकार अग्नि में अन्तर्यामी रूप से स्थित भगवान की पूजा करके उन्हें नमस्कार करे और नन्द-सुनन्द आदि पार्षदों को आठों दिशाओं में हवन कर्मांग बलि दे। तदनन्तर प्रतिमा के सम्मुख बैठकर परब्रह्म स्वरूप भगवान नारायण का स्मरण करे और भगवत्स्वरूप मूलमन्त्र 'ॐ नमो नारायणाय' का जप करे।

दत्त्वाऽऽचमनमुच्छेषं(वँ), विष्वक्सेनाय कल्पयेत् ।

मुखवासं(म्) सुरभिमत्, ताम्बूलाद्यमथार्हयेत् ॥ 43॥

इसके बाद भगवान को आचमन कराये और उनका प्रसाद विष्वक्सेन को निवेदन करे। इसके पश्चात् अपने इष्टदेव की सेवा में सुगन्धित ताम्बूल आदि मुखवास उपस्थित करे तथा पुष्पान्जलि समर्पित करे।

उपगायन् गृणन् नृत्यन्, कर्माण्यभिनयन् मम ।

मत्कथाः(श्) श्रावय(ञ्)छृण्वन्, मुहूर्तं(ङ्) क्षणिको भवेत् ॥ 44॥

मेरी लीलाओं को गावे, उनका वर्णन करे और मेरी ही लीलाओं का अभिनय करे। यह सब करते समय प्रेमोन्मत्त होकर नाचने लगे। मेरी लीला-कथाएँ स्वयं सुने और दूसरों को सुनावे। कुछ समय तक संसार और उसके रगड़ों-झग ड़ों को भूलकर मुझमें ही तन्मय हो जाये।

स्तवैरुच्चावचैः(स्) स्तोत्रैः(फ्), पौराणैः(फ्) प्राकृतैरपि ।

स्तुत्वा प्रसीद भगवन्- निति वन्देत दण्डवत् ॥ 45॥

प्राचीन ऋषियों के द्वारा अथवा प्राकृत भक्तों के द्वारा बनाये हुए छोटे-बड़े स्तव और स्त्रोतों से मेरी स्तुति करके प्रार्थना करे- 'भगवन्! आप मुझ पर प्रसन्न हों। मुझे अपने कृपा प्रसाद से सराबोर कर दें।' तदनन्तर दण्डवत् प्रणाम करे।

शिरो मत्पादयोः(ख्) कृत्वा, बाहुभ्यां(ञ्) च परस्परम् ।

प्रपन्नं(म्) पाहि मामीश, भीतं(म्) मृत्युग्रहार्णवात् ॥ 46॥

अपना सिर मेरे चरणों पर रख दे और अपने दोनों हाथों से-दायें से दाहिना और बायें से बायाँ चरण पकड़कर कहे- 'भगवन्! इस संसार-सागर में मैं डूब रहा हूँ। मृत्युरूप मगर मेरा पीछा कर रहा है। मैं डरकर आपकी शरण में आया हूँ। प्रभो! आप मेरी रक्षा कीजिये' ।

इति शेषां(म्) मया दत्तां(म्), शिरस्याधाय सादरम् ।

उद्वासयेच्चेदुद्वास्यं(ञ्), ज्योतिर्ज्योतिषि तत् पुनः ॥ 47॥

इस प्रकार स्तुति करके मुझे समर्पित की हुई माला आदर के साथ अपने सिर पर रखे और उसे मेरा दिया हुआ प्रसाद समझे। यदि विसर्जन करना हो तो ऐसी भावना करनी चाहिये कि प्रतिमा में से एक दिव्य ज्योति निकली है और वह मेरी हृदयस्थ ज्योति में लीन हो गयी है। बस, यही विसर्जन है।

अर्चादिषु यदा यत्र, श्रद्धा मां(न्) तत्र चार्चयेत् ।

सर्वभूतेष्वात्मनि च, सर्वात्माहमवस्थितः ॥ 48॥

उद्धव जी! प्रतिमा आदि में जब जहां श्रद्धा हो, तब तहाँ मेरी पूजा करनी चाहिए; क्योंकि मैं सर्वात्मा हूँ और समस्त प्राणियों में तथा अपने हृदय में भी स्थित हूँ।

एवं(ङ्) क्रियायोगपथैः(फ्), पुमान् वैदिकतान्त्रिकैः ।

अर्चन्नुभयतः(स्) सिद्धिं(म्), मत्तो विन्दत्यभीप्सिताम् ॥ 49॥

उद्धव जी! जो मनुष्य इस प्रकार वैदिक, तान्त्रिक क्रियायोग के द्वारा मेरी पूजा करता है, वह इस लोक और परलोक में मुझसे अभीष्ट सिद्धि प्राप्त करता है।

मदर्चां(म्) सम्प्रतिष्ठाप्य, मन्दिरं(ङ्) कारयेद् दृढम् ।

पुष्पोद्यानानि रम्याणि, पूजायात्रोत्सवाश्रितान् ॥ 50॥

यदि शक्ति हो तो उपासक सुन्दर और सुदृढ़ मन्दिर बनवाये और उसमें मेरी प्रतिमा स्थापित करे। सुन्दर-सुन्दर फूलों के बगीचे लगवा दे; नित्य की पूजा, पर्व की यात्रा और बड़े-बड़े उत्सवों की व्यवस्था कर दे।

पूजादीनां(म्) प्रवाहार्थं(म्), महापर्वस्वथान्वहम् ।

क्षेत्रापणपुरग्रामान्, दत्त्वा मत्सार्ष्टितामियात् ॥ 51॥

जो मनुष्य पर्वों के उत्सव और प्रतिदिन की पूजा लगातार चलने के लिये खेत, बाजार, नगर अथवा गाँव मेरे नाम पर समर्पित कर देते हैं, उन्हें मेरे समान ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है।

प्रतिष्ठया सार्वभौमं(म्), सद्मना भुवनत्रयम् ।

पूजादिना ब्रह्मलोकं(न्), त्रिभिर्मत्साम्यतामियात् ॥ 52॥

मेरी मूर्ति की प्रतिष्ठा करने से पृथ्वी का एकच्छत्र राज्य, मन्दिर-निर्माण से त्रिलोकी का राज्य, पूजा आदि की व्यवस्था करने से ब्रह्मलोक और तीनों के द्वारा मेरी समानता प्राप्त होती है।

मामेव नैरपेक्ष्येण, भक्तियोगेन विन्दति ।

भक्तियोगं(म्) स लभत, एवं(यँ) यः(फ्) पूजयेत माम् ॥ 53॥

जो निष्काम भाव से मेरी पूजा करता है, उसे मेरा भक्तियोग प्राप्त हो जाता है और उस निरपेक्ष भक्तियोग के द्वारा वह स्वयं मुझे प्राप्त कर लेता है।

यः(स्) स्वदत्तां(म्) परैर्दत्तां(म्), हरेत सुरविप्रयोः ।

वृत्तिं(म्) स जायते विड्भुग्, वर्षाणामयुतायुतम् ॥ 54॥

जो अपनी दी हुई या दूसरों की दी हुई देवता और ब्राह्मण की जीविका हरण कर लेता है, वह करोड़ों वर्षों तक विष्ठा का कीड़ा होता है।

कर्तुश्च सारथेर्हेतो- रनुमोदितुरेव च ।

कर्मणां(म्) भागिनः(फ्) प्रेत्य, भूयो भूयसि तत्फलम् ॥ 55॥

जो लोग ऐसे कामों में सहायता, प्रेरणा अथवा अनुमोदन करते हैं, वे भी मरने के बाद प्राप्त करने वाले के समान ही फल के भागीदार होते हैं। यदि उनका हाथ अधिक रहा तो फल भी उन्हें अधिक ही मिलता है।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहं(म्)स्यां(म्)

सं(म्)हितायामेकादशस्कन्धे सप्तविं(म्)शोऽध्यायः ॥

YouTube Full video link

https://youtu.be/MjMvyDfO3dQ